जनवरी १९८८ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

विपश्यना संगोष्ठी - १९८६

(क्रमशः)

विपश्यना और छात्र

कोल्हापूर के आर्किटेक्ट श्री राजाराम बेरी ने अपने लेख में बतलाया है कि स्कूल अथवा कॉलेज जाने वाले बालकों तथा बालिकाओं को विपश्यना कैसे सिखलाई जा सकती है। उनके अनुसार ७ से २५ वर्ष की आयु वाले बच्चों एवं किशोरों का मानस ढालना अपेक्षाकृत अधिक सरल होता है। अतः **आनापान** अथवा **विपश्यना** में प्रशिक्षित करने के लिए यह उम्र सर्वथा उपयुक्त है। **आनापान** की साधना तो सात वर्ष के बच्चे को बखूबी सिखलाई जा सकती है।

एक बार जब कल्याणमित्र गोयन्काजी विदेश में दौरे पर थे उन्हें किसी युवक की माता द्वारा अपने घर आने का निमन्त्रण दिया गया। **विपश्यना** के अभ्यास से वह युवक नशीली दवाओं के सेवन से बच गया था। जब हवाई अड्डे पर जाने के लिए एक घन्टे का समय ही बचा तब उस युवक की माता ने पूज्य गुरूजी से आग्रह किया कि उसे भी विपश्यना साधना सिखलाते जायं। यह सर्वविदित है कि इतने अल्प काल में विपश्यना का अभ्यास करवाना संभव नहीं होता है। फिर भी उन्होंने उस युवक की माता पर अनुकम्पा करके उसे १५ मिनट में आनापान की साधना का अभ्यास करवाया जो विपश्यना का प्रथम सोपान है।

विपश्यना विशोधन विन्यास के एक लेख में दर्शाया गया है कि बच्चों का सबसे पहला शिविर आचार्य विनोबा भावे की प्रेरणा से सन् १९७० में समन्वय विद्यापीठ, बगहा (बिहार) में लगाया गया था जिस में ३७ बच्चों ने भाग लिया। इसके बाद कई वर्षों तक इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया गया। सन् १९८४ में आठवीं कक्षा की छात्रा अपर्णा तोषणीवाल ने इगतपुरी में अपने मातापिता के साथ १० दिवसीय विपश्यना शिविर में भाग लिया। दो माह बाद उसने पत्र लिखा कि इस शिविर से उसे बहुत लाभ हुआ है और सुझाव दिया कि यदि १६ वर्ष से कम उम्र वाले बच्चों के लिए शिविर लगाया जा सके तो उत्तम हो। उसका यह स्वप्न अप्रेल १९८७ में साकार हुआ जब आचार्य गोयन्काजी द्वारा जमनाबाई नरसीमानजी हाईस्कूल, जुहू विले-पार्ले विकास योजना, मुंबई में ६ वीं सो १० वीं कक्षा के छात्र-छात्राओं के लिए आनापान शिविर का संचालन किया गया जो विपश्यना का प्रारम्भिक कदम है। **आनापान** के अन्तर्गत नैसर्गिक सांस को जानने का अभ्यास करवाया जाता है। इससे बच्चों का मन समाहित होकर उनकी मेधा-शक्ति बढ़ने लगती है और व्यक्तित्व का संतुलित विकास होता है।

उक्त शिविर बहुत सफल रहा। बच्चों को उनकी उम्र के अनुसार विभिन्न वर्गों में बांटा गया और पृथक-पृथक **ग्रुप-गाइड** की देखरेख में रखा गया। भले ही यह शिविर **आनापान** की साधना सिखलाने के लिए आयोजित किया गया था परन्तु दो ही दिनों में बच्चों ने इतनी अच्छी प्रगति दिखलाई कि तीसरे दिन बच्चों को सरल विपश्यना का अभ्यास करवा दिया गया। शिविर में मौन का पालन भी बहुत प्रेरणादायक रहा।

अब कुछ चुने हुए स्कूलों के छात्रवर्ग में आनापान की साधना सिखलाने और तत्पश्चात् इसका नियमित अभ्यास करवाने का प्रयास किया जा रहा है।

विपश्यना और राष्ट्रीय एकता

आय. आय. टी., दिल्ली के प्रो. वी. एन. अरोड़ा का कथन है कि आज के युग में संभवतः **धर्म** ही एक ऐसा शब्द है जिसके बारे में बहुत भ्रान्ति है। हम दिन प्रतिदिन हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, सनातन धर्म, जैन धर्म की चर्चा सुनते हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि **धर्म** शब्द **संप्रदाय** का पर्यायवाची हो गया है जबकि ऐसा है नहीं। जब भगवान बुद्ध ने कहा था कि धर्म का जीवन जिएं तब उनका तात्पर्य यह था कि प्रकृति के नियमों के अनुसार जीवन जिएं। यदि सभी लोग ऐसा करने लगें तो अलग-अलग वर्ग के लोगों के लिए अलग-अलग प्रकार के धर्म नहीं हो सकते। संसार के सभी मनुष्यों के लिए एक ही धर्म हो सकता है चाहे वे कहीं भी निवास करते हों और उनकी कोई भी जाति, वर्ण अथवा मान्यता हो।

श्रीलंका सरकार के अधिकारी एवं पालि-विद्वान श्री. के. विजेवीरा ने इसे अधिक स्पष्ट किया है कि भगवान् ने जन्म को महत्व न देकर कर्म को ही महत्व दिया –

न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
कम्मुना वसलो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो॥

(खुद्दक निकाय)

अर्थात् कोई व्यक्ति जन्म से शूद्र नहीं होता, न जन्म से ब्राह्मण होता है। कर्म से शूद्र होता है, कर्म से ही ब्राह्मण होता है।

यह भारतवर्ष का दुर्भाग्य है कि वह धर्म के नाम पर सांप्रदायिकता और जाति-पाति के शिकंजे में इस कदर जकड़ा हुआ है कि उसकी राष्ट्रीय एकता खतरे में है। ऐसे आड़े समय में राष्ट्र की अखण्डता बनाए रखने में विपश्यना का बहुत बड़ा योगदान हो सकता है क्योंकि इस साधना से मनुष्य शुद्ध धर्म के सम्पर्क में आता है जिसका साम्प्रदायिकता से कोई लेन-देन नहीं होता। तीन शताब्दी ईसा पूर्व सम्राट अशोक ने इसी भारतवर्ष में शुद्ध धर्म का प्रचार किया जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय एकता की एक बेजोड़ मिसाल कायम हुई।

नव नालंदा महाविहार के भूतपूर्व निदेशक सर्वश्री डॉ. सी.एस. उपासक तथा पालि विद्वान प्रो. डी. सी अहीर ने सम्राट अशोक द्वारा जनसाधारण तक शुद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के बारे में क्या-क्या उपाय किए गए इस पर बहुत विस्तार से प्रामाणिक प्रकाश डाला है। अशोक ने अपने शिलालेखों/स्तूपों में बार-बार **धम्म** शब्द का प्रयोग किया और लोगों से अपेक्षा की कि वे **धम्माचरण** (धर्म पर आचरण) करें। जहां कहीं स्तूपों, इत्यादि में **धम्म** शब्द की परिभाषा अथवा व्याख्या की गई है उसका सार वही है जो बुद्धवाणी में है। उसने जिन सद्गुणों को आत्मसात् करने के लिए बल दिया वे हैं – दया, दान, सत्य, शुचिता, मृदुता, साधुता, संयम, भावशुद्धि, कृतज्ञता दृढ़भक्ति तथा धम्मरति। अशोक का ध्येय यही था कि उसकी प्रजा के सभी लोग चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के हों विपश्यना साधना करते हुए शुद्ध जीवन व्यतीत करें। यही कारण है कि उसने कहीं भी भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित **चार आर्य सत्यों, आर्य अष्टांगिक मार्ग, निर्वाण** और यहां तक कि **विपश्यना** को भी अपने शिलालेखों/स्तूपों में इन नामों से नहीं पुकारा जिससे कोई व्यक्ति केवल इन नामों के कारण ही शुद्ध धर्म से विमुख न हो जाय। उसने प्रजा के सन्मुख साधारण से साधारण व्यक्ति की समझ में आनेवाली शब्दावली में धर्म के सार का प्रतिपादन किया जिससे लोग धर्म धारण कर सकें। **विपश्यना** साधना के लिए भी अशोक ने अत्यन्त सरल शब्द **निज्झति** (अर्थात् ध्यान) का जगह-जगह प्रयोग किया।

कल्याणमित्र गोयन्काजी भी बार-बार यही कहते हैं कि नामों में कुछ नहीं रखा, लाभ तो धर्म को धारण करने से होता है। कोई अपने आप को

किसी भी नाम से पुकारे परन्तु धर्म धारण करले तो उसका कल्याण अवश्यंभावी है। वस्तुतः **शुद्ध धर्म** और **हठधर्मिता** एक दूसरे के विपरीत हैं। अशोक ने भी अपने शिलालेखों/स्तूपों में कहीं भी किसी प्रकार की हठधर्मिता नहीं दिखलाई। उसका तो यही कहना था – "सब लोग मेरी सन्तान हैं। मैं सब लोगों के लिए सुख और शान्ति की कामना करता हूं जैसे कि अपनी सन्तान के लिए।"

सयाजी ऊ बा खिन के शब्दों में "विपश्यना साधना किसी भी देश में **कल्याणकारी राज्य**की स्थापना के लिए शुभ संकेत है।"

क्रमशः

विपश्यना और स्वास्थ्य

बम्बई में हेल्थ-क्लब की संचालिका श्रीमती रमा बंस का कहना है कि कोई व्यक्ति सही मायने में तभी स्वस्थ कहलासकता है जब वह शरीर से निरोग हो और उसका चित्त भी शान्त हो। जापानी इसे **काके बोटेके** कहते हैं। वस्तुतः **काके बोटेके**से तात्पर्य उस दर्पण से है जिसमें व्यक्ति का चेहरा तो दिखलाई देता ही है परन्तु इसके ऊर्ध्वभाग पर करुणामय बुद्ध को भी प्रदर्शित किया होता है। जापानी लोगों की धारणा है कि शारीरिक सौन्दर्य का ध्यान तो रखना चाहिए परन्तु मन भी शान्ति की परिधि से बाहर नहीं चला जाना चाहिए। इस प्रकार यदि हम शरीर और मन के शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व को बनाए रखने की चेष्टा करें तो बाहर, भीतर दोनों ओर से सौन्दर्य बिखरने लगेगा।

बर्मा के ख्यातिप्राप्त चिकित्सक डॉ. ओम प्रकाश (अब दिल्ली आ बसे हैं) के अनुसार खराब स्वास्थ्य के मुख्य कारण हैं चिन्ता और तनाव। तनाव से मन ऐसा कुण्ठित रहता है कि व्यक्ति न तो ठीक से सोच सकता है और न सही काम कर सकता है। ऐसी स्थिति में चिन्ता और अधिक जोर पकड़ने लगती है, जिससे निद्रा का ह्रास हो जाता है। इससे स्वभाव में चिड़चिड़ापन आने लगता है, भूख मंद पड़ जाती है, काम करने की शक्ति समाप्त हो जाती है और मन विचलित रहता है। यदि इस समस्या का निदान किया जाय तो पता चलेगा कि जब जब कोई व्यक्ति अपने मन में विकार जगाता है, वह विचलित हो जाता है। कोई मनचाही बात पूरी न हो अथवा अनचाही बात हो जाय तो मन में तनाव व्याप्त होने लगता है। यह क्रम बार-बार चलता रहे तो स्थायी रूप से चिन्तित रहने का स्वभाव बन जाता है जिससे स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके फलस्वरूप पहले छोटी-छोटी बीमारियां लगती हैं और कुछ समय बाद बड़े रोग प्रकट होने लगते हैं, यथा मधुमेह, उच्च रक्तचाप, उन्माद आदि। वस्तुतः सारे दुःखों का मूल कारण **तृष्णा** है। तृष्णा का समूल उच्छेद विपश्यना साधना से ही संभव है। जैसे-जैसे वस्तुओं अथवा स्थितियों को बिना राग, बिना द्वेष किए देखने का अभ्यास पुष्ट होता जाता है वैसे वैसे तनाव दूर होकर मन में शान्ति समाने लगती है और काम करने की शक्ति बढ़ जाती है। जीवन में आनेवाली कठिनाइयों के बावजूद चित्त प्रसन्न रहता है और स्वास्थ्य सुधर जाता है।

डॉ. सी. वी. जोगी ने भी लगभग यही मत व्यक्त किया है कि सब रोग पहले मन में घर करते हैं और बाद में शरीर पर प्रकट होते हैं। अधिकांश लोग रोगों के इस मूलभूत सिद्धान्त को नहीं समझते। भले ही रोगों को दूर करना विपश्यना का उद्देश्य नहीं है परन्तु इसके अभ्यास से चित्त निर्मल होने लगता है और चित्त निर्मल होने से अनेक प्रकार के मानसिक तथा शारीरिक रोग स्वतः ही दूर होने लगते हैं।

बम्बई के प्रसिद्ध उद्योगपति श्री देशबन्धु गुप्ता का कथन है कि मानसिक रोगों से ग्रस्त व्यक्ति विपश्यना के सतत् अभ्यास से लाभान्वित हो रहे हैं जैसे- माइग्रेन, हाइपरटेन्शन, संधिशोध, स्पोंडीलोसिस, दमा, मधुमेह, अस्पष्ट पीड़ाए, भय, दुर्व्यसन जैसे धूम्रपान, मधुपान, नशीली दवाओं का सेवन। मस्क्युलर डिस्ट्रोफी के असाध्य रोग में भी एक रोगी को असाधारण लाभ प्राप्त हुआ है।

श्री प्रवीणचन्द्र शाह ने बतलाया है कि मुझे हृत्शूल तथा उच्च रक्तचाप में लाभ पहुंचा है। विपश्यना साधना से मेरा मानस दिन प्रतिदिन स्वच्छ होता जा रहा है और जीवन जीने योग्य बनता जा रहा है।

नासिक के व्यापारी श्री श्रवणकुमार अग्रवाल ने बतलाया है कि ३० वर्ष की अवस्था में मुझे मस्क्युलर डिस्ट्रोफी नाम का असाध्य रोग हो गया था। इसमें सारे शरीर की मांसपेशियां शिथिल पड़ जाती हैं, हाथ-पैर काम करना बन्द कर देते हैं और रोगी एक अपाहिज के समान खाट पर पड़ा रहता है। इस रोग का पता लगने पर मेरे भीतर तनाव ही तनाव भरने लगे और भविष्य का जीवन सर्वथा अंधकारमय नजर आने लगा। ऐसी स्थिति में किसी मित्र के सुझाव पर सन् १९७९ में मैंने एक विपश्यना शिविर में भाग लिया। इससे कुछ लाभ होने पर कुछ और शिविर लिए। इसके फलस्वरूप मुझे मानो नया जीवन मिल गया है। पहले दो-चार कदम चलना भी बहुत कष्टप्रद था, अब धीरे-धीरे एक किलोमीटर तक चल फिर सकता हूं। पहले दो-चार सीढ़ियां चढ़ना भी बहुत दुष्कर था, अब २५-३० सीढ़ियां आसानी से चढ़ लेता हूं। पहले २-३ घन्टे की बस अथवा रेल की यात्रा बड़ी दुखद प्रतीत होती थी, अब १८-२० घन्टे के यात्रा के बाद भी शरीर में स्फूर्ति बनी रहती है। पहले दोनों टांगों में शरीर के अन्य अवयवों का तुलना में तापमान कम रहता था, अब तापमान बढ़ा है जिससे आभास होता है कि रक्तसंचार बढ़ रहा है। पांवों के पंजे सिकुड़ते जा रहे थे, अब वे करीब आध इंच खुल गए हैं। टखने और घुटनों के जोड़ भी काफी खुल गए हैं। मांसपेशियां फिर मजबूत होने लगी हैं। मुझे ऐसे लगता है मानों कोई निर्जीव व्यक्ति फिर सजीव हो गया है।

कनाडा के डॉ. जॉर्ज पोलैंड ने chronic sinusitis रोग से ग्रस्त वियत-नाम के एक नौजवान सिविल इंजीनियर का उदाहरण प्रस्तुत किया है। विवर बंद होने के कारण उसे श्वास लेने में बड़ी कठिनाई होती थी और इस कारणवश उसका सोना और काम करना हराम हो रहा था। उसने कइ शल्यक्रियाएं करवाईं परन्तु इनसे तनिक भी लाभ नहीं हुआ। डॉ. पोलैंड को उसने बतलाया कि उसे जब कभी घर पर या काम पर दबाव का सामना करना पड़ता तब तब उसकी हालत बदतर हो जाती। डॉक्टर अपने अनुभव से जानते थे कि दबाव को दूर करने में विपश्यना साधना बहुत कारगर है। अतः उन्होंने रोगी को १० दिन का विपश्यना शिविर लेने का सुझाव दिया। उसने मांट्रियल में पूज्य गोयन्काजी के सान्निध्य में शिविर लिया और इसके बाद अपना अभ्यास जारी रखा। छः माह बाद उसके शल्यचिकित्सक भी अचम्भे में पड़ गए कि सब इलाज छोड़ देने पर भी उस रोगी की हालत में आशातीत सुधार कैसे हो गया। एक वर्ष बाद तो इन्हीं शल्यचिकित्सकों की राय में उसकी हालत में १० प्रतिशत सुधार हो चुका था।

सयाजी ऊ बा खिन की मान्यता तो यहां तक थी कि भगवान् बुद्ध द्वारा बतलाई गई विधि के अनुसार यदि कोई व्यक्ति साधना करे तो उसमें जो **निब्बान धातु** उत्पन्न होगी वह इतनी प्रखर होगी कि आज के आणविक युग में यदि उसके भीतर कोई रेडियोधर्मी विष हों तो उन्हें भी निकाल बाहर कर सकती है।

क्रमशः